ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

सुकवि बनारसीदास की आत्मकथा में चित्रित समाज

शोध सारांश :

बनारसीदास राज सम्मानित कवि थे । बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्ध-कथानक' में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन के ही चित्र नहीं बल्कि उनके अपने चारित्रिक दोष का भी वर्णन है । इसमें मुगलकालीन शासन व्यवस्था का व्यापक अध्ययन है । १७-१७ वीं शताब्दी में समाज में व्याप्त सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं का व्यौरेदार वर्णन ही नहीं । साथ ही हिन्दुस्तान की समृद्धि का भी चित्रण है । शासक वर्ग एवं प्रजावर्ग की समाज में स्थिति गति पर इसमें गहराई से विचार किया गया है ।

संकेताक्षर :

बादशाहत, पारदर्शिता, प्रजापीडक, वजीअ, सूबेदार, बाँभन, तंबोली, ठठेरे, चटशाला, ताजपेशी, कुस्वानी, उचापत हाकिम, तख्ते-ताऊस सराफ, उमराव, जौहरी ।

प्रस्तावना :

बनारसीदास का आत्मचरित हिंदी ही नहीं भारतीय भाषा का पहला आत्मचरित है । बनारसीदास की आत्मकथा भक्तिकालीन हिंदी साहित्य की एक अनूठी कृति है । उनकी आत्मकथा में अकबर, जहाँगीर, तथा शाहजहाँ के काल के जन-जीवन के ऐसे अछूते और दुर्लभ चित्र मिलते हैं । जिस सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में बनारसीदास हुए, वह भारतीय इतिहास का अति महत्वपूर्ण लोक-जागरण का काल था । साहित्य, संगीत, कला, स्थापत्य- सभी क्षेत्रों में देश ने महत्वपूर्ण उन्नति की । बनारसीदास ने

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

इसमें अपने व्यापारी परिवार की ३ पीढियों का इतिहास अंकित किया है । पितामह बादशाह हुमायूँ की बादशाहत के पहले दौर में १५३५ ई. में हरियाणा के पैतृक गाँव बीहोली को छोडकर नरवर (मालवा) में आ बसे । वहीं उनके पिता का जन्म हुआ । हुमायूँ की बादशाहत के दूसरे दौर में १५५६ में उनकी मृत्यु होते ही मुगल हाकिम ने उनकी सारी संपत्ति सरकारी संपत्ति होने की घोषणा करके अपने कब्जे में ले ली । ५ वर्ष की आयु में पिता ने अनाथ हो जाने पर अपनी सद्य:विधवा माता को लेकर पश्चिमांचल से भागकर पूर्वांचल के जौनपुर नगर में आकर अपने नाना का आश्रय लिया । बनारसीदास का जन्म अकबर के ३१ वें राज्यवर्ष में जौनपुर में हुआ । पिता का देहांत होने पर वह जहाँगीर के ११वें राज्यवर्ष में आगरा में स्थायी रूप से निवास करने लगे । शाहजहाँ के १४ वें राज्यवर्ष में उन्होंने ५५ वर्ष की आयु में अपनी आत्मकथा लिखी ।

बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्ध-कथानक' में चित्रित तबका समाज :

बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्ध-कथानक' में उनके काल के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन के विविध चित्र प्रतिबिंबित हैं । उन्होंने अपने चारित्रिक दोषों का बेहिचक वर्णन किया है । उन्हें छिपाया नहीं है । उनके व्यक्तित्व की यह ईमानदारी और पारदर्शिता स्थान-स्थान पर पाठकों को अभिभूत कर लेती है । उन्होंने अपने व्यक्तित्व को कहीं पर अतिरंजित अथवा बड़ा बनाकर नहीं दिखाया है । स्वकीय चित्रण में बराबर यही प्रयत्न किया है - मैं जैसा कुछ हूँ, आपके सामने हूँ ।' बनारसीदास ने ५५ वर्ष की आयु में जिस समय अपनी आत्मकथा लिखी वह अध्यात्मवादी कवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे । उनकी गणना आगरा जैन समाज के शीर्षस्थ पंडितों तथा ज्ञानियों में होती थी । उस समय आगरा में भाषा में कविता करनेवाला और अध्यात्म के क्षेत्र में उनके जैसा ज्ञानी दूसरा कोई नहीं था ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

उनके हृदय में सुष्टता का भाव था, दुष्टता लेशमात्र नहीं थी । मनसा वाचा समत्व की टेक, क्षमावंत, संतोषी, मिठबोले सबके हित की बात करनेवाले, संकल्पवान, सुस्थिर चित्त, सहनशील, परस्त्री गमन तथा कुव्यसनों के त्यागी थे । हृदय में क्रोध, मान, माया, मोह लोभ के कषाय भाव जलरेखा के समान थे । गृहत्यागी बनने की कोई इच्छा नहीं थी । गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ मानते थे । संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का शुद्ध पाठ करते थे । काव्य पाठ की कला में प्रवीण थे । बनारसीदास ने संवत् १६७१ में २८ वर्ष की अवस्था में व्यापार कार्य से बनारस में प्रवास किया था । उन्हें राज-सम्मानित कवि का पद प्राप्त था । बनारस के मुगल फौजदार ने उन्हें सिरोंपाज से सम्मनित किया था । रामचंद्रशुक्ल ने अपने इतिहास में बनारसीदास का नाम भक्तिकाल के फुटकर कवियों में गिनाया है । जिस प्रकार बनारसीदास के व्यक्तित्व पर उनके युग की पूरी छाप थी उसी प्रकार उनके काव्य पर युग भावना की पूरी छाप थी ।

१) मुगलकालीन शासन व्यवस्था : तथा न्याय व्यवस्था के मूल स्वरूप पर रोशनी डालनेवाले अनेकानेक चित्र बनारसीदास की आत्मकथा में मिलते हैं । उस काल में नागरिकों की व्यक्तिगत स्वाधीनता की सुरक्षा, उनके जान-माल की सुरक्षा की कोई अवधारणा विद्यमान नहीं थी । देशी रजवाड़ों में भी वही स्थिति थी जो मुगल बादशाहों की सलतनत में थी । सब कुछ स्वेच्छाचारी शासक की न्याय भावना पर निर्भर करता था । नागरिक संपत्ति की लूट-मार, धनी नागरिकों को सताकर, धमकाकर अथवा अमानवीय रीति से दंडित करके धन की वसूली करना उस काल के शासकों तथा अधिकारियों का चरित्र था । अकबर और जहाँगीर जैसे न्यायप्रिय बादशाहों के शासन काल में भी राज्याधिकारियों द्वारा नागरिकों की लूट खसोट चलती थी । प्रजापीडक राज्याधिकारियों के उत्पीडन से बचने का एक ही उपाय शांतिप्रिय नागरिकों के पास था । नगरों से पलायन करके जंगलों में अथवा दूसरे

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

नगरों अथवा राज्य में आश्रय लेना । अधिकारियों के उत्पीडन से बचने के लिए ही नहीं, युद्ध का भय उपस्थित होने अथवा अराजकता की स्थिति में भी नागरिक नगर छोडकर भागने के लिए विवश हो जाते थे । अकबर की वृद्धावस्था में युवराज सलीम के विद्रोह कर देने पर भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । उस समय बनारसीदास १४ साल के थे । मुगलकालीन शासन व्यवस्था में मुद्रा की शुद्धता बनाये रखने का कितना कड़ा आर्थिक प्रबंध था । मुगलकाल की सारी समृद्धि व्यापार की समृद्धि पर निर्भर थी और अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासनकाल में चलनेवाले चाँदी के टकसाली रुपयों तथा सोने की अशर्फियों की शुद्धता की ख्याति इस बात पर निर्भर थी कि गैर टकसाली सिक्कों का चलन रोकने के लिए केवल बड़े कानून ही नहीं बने थे, उन कानूनों का पालन कड़ाई से कराया जाता था । गैर-टकसाली रुपयों अथवा अशर्फियों का चलन प्रतिबंधित था और ऐसे प्रतिबंधित सिक्कों को चलानेवाले सराफों को ठग मानकर उन्हें सार्वजनिक रूप से सूली पर लटका दिया जाता था । बनारसीदास की इस आत्मकथा से हमें अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के मुगलकालीन शासन के संबंध में कई बातों की जानकारी मिलती है । मुगलकालीन शासन मूलत: सैनिक प्रशासन था । केंद्र में बादशाह के हाथ में सारी सैनिक, नागरिक तथा न्यायिक शक्तियाँ केंद्रित थीं । प्रशासन चलाने के लिए उसके नीचे एक वजीर (प्रधानमंत्री), दीवान, मीर बख्शी (सैनिकों का वेतन बाँटनेवाला फौजी अधिकारी) धर्म विभागध्यक्ष तथा अनेकानेक गौण अधिकारी रहते थे । मुगल साम्राज्य १५ सूबों में तथा सूबे सरकार (जिला) तथा परगनों में बँटे थे । सूबे के शासक को पहले सिपह सालार कहा जाता था, बाद में वह सूबेदार कहलाने लगा किसी भी स्तर पर सैनिक और नागरिक शासन में भेद नहीं था । इलाहाबाद, जौनपुर, बनारस आदि के हाकिम फौजदार कहलाते थे । इसी प्रकार का एक हाकिम परगना स्तर पर भी रहता था ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

कोतवाल पुलिस अधिकारी का कार्य करता था और दंडाधिकारी का भी । दीवान राजस्व अधिकरी का कार्य करता था और न्यायाधिकारी का भी ।

२) समाज के विभिन्न वर्ग : बनारसीदास की आत्मकथा में उस काल के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अवस्था के नेकानेक चित्र मिलते हैं । उस काल का हिंदू समाज मुख्य रूप से २ वर्ग में - ऊँच और नीच, धनी और दरिद्री में बंटा था । बनारसीदास ने अपने जन्म नगर जौनपुर का जो वर्णन किया है, उसमें उनके काल के समाज में एक नगर में विविध वर्गों-धनी और दरिद्री, ऊँच और नीच, सभी वर्णों के लोग किस प्रकार एक दूसरे से एक आर्थिक ताने-बाने में जुडे रहते थे, इसकी एक उम्दा तसवीर मिलती है । यह तसवीर उस काल के अन्य नगर-इलाहाबाद, बनारस, पटना, आगरा आदि में भी न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिलती होगी । नगरों में चारों वर्णों के लोग रहते थे । बाँभन(ब्राह्मण), छत्री (क्षत्रीय) तथा बैस (वैश्य) लोगों की गिनती ऊँची जातियों में होती थी इनकी संख्या अपार होती थी । इससे संकेत मिलता है कि नगरों में ऊँची जातियों के लोग बड़ी संख्या में रहते थे । उनमें बहुत से धनी होते थे । इसके अतिरिक्त छत्तीस प्रकार की छोटी और नीच जातियों के जो लोग नगरों में बसते थे, उनकी गणना शूद्र वर्ग में की जाती थी । उनमें बहुत-से दरिद्री होते थे । समाज के विविध वर्गों के लोग किस प्रकार जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न पेशे, हस्त-शिल्प तथा उद्योगों से जुडकर नगर के आर्थिक तानेबाने का एक अंग बन जाते थे इसकी अच्छी झाँकी उनके जौनपुर वर्णन में मिलती है । इस वर्णन में उनके काल के समाज के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का बोलता हुआ चित्र मिलता है । उनके काल में सभी निपुण कारीगरों तथा शिल्पियों की गणना शूद्रों में की जाती थी । चित्र कर्म करनेवाले चितेरे (चित्रकार) कागज बनाने व बेचनेवाले कागदी (कागजी) हलवाई, सुनार, लुहार, तेली, बुनकर, नाई, तंबोली, बढ़ई दरजी, ठठेरे, ग्वाले, कुम्हार, माली आदि शूद्रों में परिगणित होते थे । बारुद का उपयोग उसकाल में तोपों में होने

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

लगा था । इसके अतिरिक्त बारुद का उपयोग आतिशबाजी बनाने में भी होता था । काँच अथवा शीशे का उपयोग दर्पण, आईना, आरसी, झाड फानूस आदि बनाने में होता था । धनिकों में इनका बड़ा चलन था । शीरो के शीशमहल भी बनाये जाते थे । कागज का उपयोग बड़े पैमाने में शासन कार्यों में अभिलेख रखने, शासनादेश प्रसारित करने, वाक्यानवीसों द्वारा अपनी गुप्त रिपोर्ट भेजने, व्यापार में ही खातों में हिसाब लिखने में तथा हस्तलिखित पुस्तकों के लेखन में होता था । इन हुनरों में निपुण कारीगरों की गणना शूद्रों में होती थी । शूद्रों में छोटी जातियों के लोगों तथा नीची जाति के लोगों, दोनों की गणना होती थी । बनारसीदास ने अपने वर्णन में छोटी जाति के लोगों के लिए पौंन तथा पवनिया शब्द का प्रयोग किया है ।

३) बाल विवाह : बनारसीदास के काल के समाज में बाल विवाह का व्यापक प्रचलन था । लड़कियों को ऋतुमती होने से पूर्व ब्याह दिया जाता था । बनारसी की सगाई नौ साल की उम्र में हुई, ग्यारह साल की उम्र में उनका विवाह कर दिया गया । उनकी पत्नी की उम्र भी दस के आसपास रही होगी । समान धर्म, समान जाति तथा समान हैसियत का कुल होने पर विवाह संबंध स्थिर कर लिया जाता था । विवाह संबंध स्थिर करने के लिए वधू का पिता अपने कुल के पुरोहित को नाई के साथ वर के पिता के पास भेजता था वह विवाह संबंधस्थापित करने की अपनी इच्छा प्रकट करने हेतु एक पत्र लिखकर पुरोहित को सौंप देता था । यदि वर का पिता नाई के हाथ भेजे गये नारियल को स्वीकार कर लेता था तो पुरोहित वर को तिलक कर देता था और इस प्रकार सगाई की रस्म पूरी हो जाती थी । पुरोहित उसी समय विवाह का शुभ मुहुर्त स्थिर करने शुभ तिथि निर्धारित कर देता था । उस तिथि पर वर का पिता बारात लेकर समधी के द्वारा आता था और विवाह संपन्न होने के बाद वधू को अपने साथ विदा करा ले जाता था । वधू की छोटी उम्र होने के कारण पहली बार वह ससुराल में एक दो महीने रहती थी । इसके बाद वह मायके वापस लौट जाती थी ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

उसको विदा कराने उसका कोई निकट संबंधी आता था । लड़की के ऋतुमती होने के बाद उसका गौना कर दिया जाता था । लड़का भी उस समय तक जवान हो जाता था । १५-१६ बरस का लड़का जवान मान लिया जाता था । अर्थात उसे स्त्री समागम के योग्य मान लिया जाता था । बनारसीदास जब गौने के लिए दूसरी बार अपनी ससुराल खैरागढ गये, उनकी आयु १५ बरस १० महिना थी । बाल-विवाह की प्रथा प्रचलित होने का परिणाम यह था कि लडके और लडकी बहुत कम आयु में संतानवान हो जाते थे । बनारसीदास जब पिता बने, उनकी आयु मात्र १७ वर्ष थी । २१ वर्ष की आयु होने तक वह ३ संतानों के पिता बन चुके थे । एक पुत्री और दो पुत्र । पहलौठी की पुत्री जन्म लेने के ६-७ दिन बाद मर गई । साल भर बाद दूसरी संतान पुत्र हुआ । वह भी मर गया । तीन साल बाद दूसरा पुत्र हुआ । वह भी कुछ दिनों बाद मर गया । इसके बाद तीसरा पुत्र सात साल बाद हुआ । १५ दिनों बाद माता और पुत्र दोनों की मृत्यु हो गई । ग्यारह साल की उम्र में ब्याह दिये गये बनारसी २८ साल की उम्र में विधुर हो गये । उनकी पत्नी मायके में थी । वहीं प्रसूति हुई । प्रसूति के बाद जच्चा-बच्चा दोनों की मृत्यु हो गई । बाल विवाह तथा कम उम्र में लड़के और लड़कियों के संतानवान बन जाने का कुपरिणाम यह था कि शिशु मृत्यु की दर तथा प्रसूति काल में जच्चा-बच्चा दोनों की मृत्यु दर बहुत ऊँची थी । बाल-मृत्यु की दर भी बहुत ऊँची थी । बनारसीदास के जीवन का यह दृष्टांत दर्शाता है कि उनके काल के समाज में शिशु-मृत्यु की दर, बाल मृत्यु की दर तथा प्रसूति काल में जच्चा-बच्चा की मृत्यु पर कितनी ऊँची थी, जिसके कारण मनुष्य की आधी आयु बीतते-बीतते और एक भी संतान के जीवित न रहने से उसका जीवन विषादपूर्ण हो जाता था । उनके समाज में अनमेल विवाह भी बडी मात्रा में प्रचलित था । उनके स्वयं के जीवन के दृष्टांत से इसका अनुमान लगाया जा सकता है । उस समाज में विधवा विवाह का चलन नहीं था ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

४) शिक्षा व उच्च शिक्षा का प्रसार : उस काल के समाज में स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखाने का चलन नहीं था । बनारसीदास की दोनों बहनों में से किसी को पढाया नहीं गया था । न उनकी माँ पढ़ी-लिखी थी, न उनकी दादी । उनकी तीनों पत्नियों में भी किसी को पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया गया था । पुरूषों में भी केवल कुछ ऊँची जातियों जैसे बनिया बाँगन, खत्रि आदि जातियों में लड़कों को शिक्षा देने का रिवाज था । बनियों के जीविकोपार्जन का साधन व्यापार था और व्यापार की आवश्यकताओं के लिए कुछ पढा-लिखा होना आवश्यक था । अतएव बनियों में लड़कों को प्रारंभिक शिक्षा के लिए चटशाला में बिठा दिया जाता था । वहाँ उन्हें इतनी शिक्षा दिलाई जाती थी जितनी व्यापार के लिए आवश्यक होती थी । उन्हें सामान्य अक्षर ज्ञान कराने के बाद इतना पढ़ना और लिखना सिखा दिया जाता था कि अक्षर बाँचने लगें और अपना लेखा (तही खाता) लिखने के योग्य हो जायें । इसके साथ ही उन्हें सामान्य गणित-पहाड़ा, गुणा-भाग, जोड़-बाकी सिखा दिया जाता था जिससे वे बही में उचापत (उधार दिए गये माल का ब्योरा) इतना जमा है, इतना लहना है, इतना देना है, उसे विधि मिलाकर लिख सकें । यह शिक्षा प्राय: बालक को उसकी आठ साल की उम्र होने पर दी जाती थी और एक दो साल में पूरी हो जाती थी । चौदह साल की उम्र हो जाने पर बनारसीदास में विधानुराग जागा और उन्होंने अपनी सामान्य शिक्षा से संतोष न करके विधासंपन्न बनने का निर्णय किया । इसके लिए उन्होंने विद्यासंपन्न गुरुओं की शरण ली, उनकी शिष्यता की । उच्च शिक्षा के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक था । गुरु ने संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि राघव-पांडवीय के रचयेता, धनंजय कृत संस्कृत भाषा के कोषग्रंथ नाममाला के दो सौ श्लोक कंठस्थ करा दिये । बनारसीदास ने उनका बनाया नाममाला कोष कंठस्थ कर लेने के बाद उनका बनाया ४६ श्लोकीय अनेकार्य नाममाला भी कंठस्थ कर लिया । इससे उनके संस्कृत भाषा के शब्द तथा अर्थ के ज्ञान में अपूर्व वृद्धि हुई । इसके बाद उन्होंने गुरु

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

से अलंकार शास्त्र, ज्योतिष का अध्ययन किया । गुरु ने उन्हें आचारशास्त्र, धर्म नीति, समाजनीति, अर्थनीति तथा राजनीति का ज्ञान कराने के लिए संस्कृत भाषा के ५०० स्फुट श्लोक कंठस्थ करा दिये । इससे बनारसीदास सर्वविद्यासंपन्न बन गये ।

५) अंधविश्वासों का व्यापक प्रचलन : बनारसीदास कालीन समाज में अंधविश्वासों, अंधरूढ़ियों तंत्र-मंत्र तथा इच्छाओं की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं की मनौती मानने का प्रचलन था । सती प्रथा तथा जौहर प्रथा का प्रचलन बडे पैमाने पर हुआ । देश के विविध भागों में स्थान-स्थान पर स्थापित सती स्मारक तथा सती चौरे इसका प्रमाण थे । बनारसीदास के पैतृक स्थान रोहतक में अऊत सती की बडी महिमा थी । यह मान्यता थी कि पति-पत्नी यदि पुत्र कामना से सती की जात (यात्रा) करते हैं तो उनकी कामना अवश्य पूरी होती है । बनारसीदास कालीन समाज में रमते सन्यासी और जोगी नगर-नगर में भ्रमण किया करते थे । वे धार्मिक अंधविश्वासों और मूढताओं को हवा दिया करते थे । पुत्र के चिरंजीवी होने की कामना से भी लोग अपने इष्ट देवता की जात पर जाते थे । बनारसी जब ६-७ महीने हो गए तो उनके चिरंजीवी होने की कामना से कुटुंब के साथ पार्श्वनाथ की जात पर बनारस गये ।

६) धार्मिक आचार विचार : बनारसीदास का काल गंभीर धार्मिक विचार मंथन तथा सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का काल था । उत्तर भारत के हिंदी भाषी, प्रदेशों में शैव और वैष्णव धर्म उस काल के लोकधर्म थे । उस काल में दुर्गा, शीतला आदि देवियों की पूजा का भी व्यापक प्रचलन था । कबीरपंथी, रैदासंपथी, दादूपंथी संत दलित वर्गों में नई चेतना जगाने में सक्रिय थे । जोगी और सन्यासी नगर-नगर में घूमा करते थे । सूफी औलिया, पीर और दरवेशों को भी समाज में पूज्य दृष्टि से देखा जाता था । बनारसीदास के काल में तीर्थ-भक्ति तथा तीर्थयात्रा का भी व्यापक प्रचलन था । कार्तिक पूर्णिमा पर बडी संख्या में शिवभक्त शिव की नगरी काशी की जात (यात्रा) पर जाते थे और वहाँ गंगा स्नान करते थे । जैनियों में शिखरजी की

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

यात्रा का बड़ा माहात्म्य था । दक्षिणी बिहार में हजारीबाग के निकट स्थित इस पर्वत शिखर को सिद्ध क्षेत्र माना जाता था । जैनियों में मान्यता थी कि उनके चौबीस में से बीस तीर्थंकरों ने इसी पर्वत शिखर से सिद्धि पद अथवा निर्वाण प्राप्त किया ।

७) आर्थिक संपन्नता : आर्थिक दृष्टि से बनारसीदास के काल में भारत की गणना संसार के सबसे समृद्ध और वैभवशाली देशों में होती थी । उन्होंने अपनी आत्मकथा शाहजहाँ के राज्यकाल में ५५ की आयु में लिखी थी । शाहजहाँ जिस दिन दिल्ली के तख्त पर बैठा, उसने डेढ़ करोड़ रुपया अपनी ताजपेशी पर खर्च किया । सात करोड़ दस लाख रुपया खर्चकर तख्ते-ताऊस (मोर के आकार का बैठने का सिंहासन) बनवाया । उस काल में हिंदुस्तान की बादशाहत से बत्तीस करोड़ रुपया सालाना की आमदनी थी । वह प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ रुपया सालगिरह पर खर्च करता था । मरने पर वह बयालीस करोड़ रुपया नकद छोड़ गया । हिंदुस्तान की इस समृद्धि का मुख्य कारण उसका व्यापार था । संसार के सभी भागों में भारतीय कपड़े का निर्यात होता था । संसार के विविध देशों के व्यापारी यहाँ से माल खरीद ले जाते थे और उसके बदले सोना देते थे । इस प्रकार यहाँ सोना बराबर इकट्ठा होता रहता था, बाहर बहुत कम जाता था । इसी कारण भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था । भारत में अनेक करोडपती व्यापारी थे । सूरत के प्रसिद्ध जैन व्यापारी बीरजी व्होरा आयात निर्यात व्यापार का सर्वप्रमुख व्यापारी था । उसकी गद्दियाँ आगरा, बुरहानपुर, गोलकुंडा आदि सुदूरवर्ती व्यापारिक केंद्रों में स्थापित थी । केवल अरब सागर में समुद्र-तटवर्ती बंदरगाहों पर ही नहीं, मलाबार तट के अधिकांश व्यापार पर उसका नियंत्रण था ।

८) व्यापार में प्रगति : मुगल बादशाहों की नीति व्यापार को हर प्रकार का प्रोत्साहन देने की थी । व्यापार स्थल मार्गों से भी होता था और जल मार्ग से भी । सडकों का उत्तम प्रबंध था । आगरा और दिल्ली से एक ओर लाहौर होकर काबुल और कंधार तक सडक जाती थी तो दूसरी ओर इलाहाबाद, बनारस और पटना होकर बंगाल

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

तक । ढाका की मलमल संसार प्रसिद्ध थी । वह इतनी महीन होती थी कि उसका एक थान अँगूठी के बीच से आसानी से निकल जाता था । सड़कों के दोनों छोरों पर छायादार वृक्ष लगे थे । स्थान-स्थान पर कुएँ, तालाब और पशुओं के पानी पीने के लिए चरही और सरायों की व्यवस्था थी । रात में सरायों के फाटक बंद कर दिये जाते थे और यात्रियों के माल की चौकसी रात में चौकीदार करते थे । प्रात:काल समय का फाटक खोलने से पहले वे उबार आवाज देकर यात्रियों को सावधान कर देते थे कि वे अपने अपने माल की जाँच कर लें । जब सबका माल सुरक्षित पाया जाता था तभी फाटक खोला जाता था । डाक व्यवस्था तथा चिट्ठियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर त्वरित गति से पहुँचाने का उत्तम प्रबंध था । त्वरित गति से पत्र पहुँचाने में प्रशिक्षित कबूतरों का प्रयोग किया जाता था । इसी प्रकार की अलग व्यवस्था बड़े साहुकारों और बडे व्यापारियों ने भी कर रखी होगी, इसका संकेत यत्र-तत्र बनारसीदास की आत्मकथा में मिलता है । बनारसीदास के काल में व्यापार में हुंडियों का व्यापक चलन था । धन एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने के लिए उसे सराफ के पास जमा कर दिया जाता था और उसकी हुंडी के आधार पर दूसरे स्थान का सराफ धन का भुगतान कर देता था । हुंडी एक प्रकार से उस काल में चेक, बैंक ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर तथा मनीऑर्डर का कार्य करती थी । माल का बीमा कराने की भी व्यवस्था थी । उस हालत में जोखिम बीमा करनेवाला उठाता था । साहूकार उस काल में बैंको का कार्य करते थे । साहूकारों की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं । बड़े महाजन कोठीवाल हुंडी का कार्य करनेवाले हुंडीवाल तथा बिचवई का कार्य करनेवाले, सौदा मोल लेने और बेचने में सहायता करनेवाले दलाल कहलाते थे । आढ़त का काम करनेवाले अढ़तिया कहलाते थे । बनारसीदास जब पहली बार आगरा की व्यापारिक यात्रा पर गये थे तो अन्य वस्तुओं में बीस मन घी, दो कुप्पे तेल और जौनपुरी कपड़ा ले गये थे । आगरा शहर यमुना के उस पार था । इस पार आढ़तियों की दूकानें थी । उन्होंने यह सब

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

सामान एक आढ़तिये की कोठी में उतार दिया था । बनारसीदास की अत्मकथा में उस काल की व्यापारिक पद्धति पर अच्छा प्रकाड पड़ता है । व्यापार में साझेदारी का व्यापक प्रचलन था । साझा करने तथा साझा तोडने के नियम निर्धारित थे । विवाद का निर्णय करने के लिए पंच की नियुक्ति की जाती थी ।

बनारसीदास ने भी अपने मित्र नरोत्तमदास के साथ मिलकर नेमा साहु के साझीदार बनकर बनारस और पटना में व्यापार किया था । इसी व्यापार से वह लक्ष्मीवान बने थे । साहु बनारसीदास कहलाने लगे थे । नेमा साहु के साथ साझेदारी में उन्होंने बड़े पैमाने पर रत्नों (जवाहरात) का भी व्यापार किया था, इसलिए जौहरी भी कहलाते थे । बनारसीदास अपने अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि रत्नों (जवाहरात) का व्यापार सर्वोत्तम होता है । उनके काल में जवाहरात का व्यापार करनेवाले जिस प्रकार जौहरी कहलाते थे उसी प्रकार रत्नजटित आभूषणों का व्यापार करनेवालों को जडिया कहा जाता था । आभूषणों में नग जोडने का काम करनेवाले सुनारों को भी जडीया कहा जाता था । सर्राफ उस काल की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे । उनका मुख्य कार्य मुद्रा की जाँच करना था । टकसाल में सोने और चाँदी की शुद्धता की परख करनेवाले उन्हीं की नियुक्ति की जाती थी । मुद्रा बदलने का काम भी सराफ ही करते थे । वे सिक्कों के वजन, धातु आदि की परख में सिद्धहस्त होते थे । कौन मुद्रा कब से चलन में है, इसकी उन्हें गहरी जानकारी होती थी ।

९) पारदर्शिता : बनारसीदास ने बडी पारदर्शिता के साथ अपनी आत्मकथा में अपने रोग का विवरण दिया है -

भयौ बनारसीदास तन, कुष्टरूप सरबंग
हाड़-हाड़ उपजी विया, केस रोम भ्रुव भंग । (१८५)

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

वह ससुराल पहुँचने के महीने भर बाद रोगग्रस्त हुए । उनके शरीर के सब अंग कुष्ठरोगी की भाँति बदरंग हो गए । सिर के बाल, शरीर के रोम भौंह के बाल झड़ गए । हाड़-हाड़ में व्यथा व्याप्त हो गई । हाथ, पैर, सारे शरीर में अनगिनत विस्फोटक हो गए । साला, ससुर, घर का कोई आदमी उनके साथ भोजन नहीं करता था । कोई उनके निकट नहीं जाता था । केवल उनकी सासु और विवाहिता स्त्री इनकी सेवा करती थी । उनके भोजन-पानी की सुधि रखती थी, आकर उन्हें मुँह में खिला देती थी । शरीर में औषधि लगा देती थी । उनके शरीर से दुर्गंध आती थी, इसलिए नाक मूँदकर उठकर चली जाती थी । ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में गुप्त यौन रोगों की दवा नापित करते थे जो गणिकाओं के गुरू कहलाते थे । बनारसीदास की दवा एक नापित ने की । वह औषधि की पुडिया खिलाता था । उन्हें चना और अलोना भोजन दिलवाता था । पैसा टका कुछ नहीं लेता था । इस तरह चार महीने बीतने पर शरीर की व्यथा कुछ कम हुई । दो मास बीत जाने पर वह चंगे हुए । नापित को दान दिया, हाथ जोडकर बिनती की कहा - तू मेरे मित्र के समान है । नापित प्रसन्न होकर अपने घर गया ।

१०) समाज में प्रचलित भाषा : बनारसीदास की आत्मकथा में वर्णित कई कथा प्रसंगों से स्पष्ट झलक मिलती है कि बादशाह अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के राज्य काल में राजभाषा फारसी होने के बावजूद शासक वर्ग तथा प्रजा वर्ग की सामान्य बोलचाल की भाषा हिंदी (अथवा हिन्दवी, हिन्दुई, हिंदगी) थी । हिंदी कवियों का सम्मान करने की बादशाह अकबर की परंपरा का पालन उसके अधिनस्थ राज्याधिकारी भी करते थे । यह सूचना बनारसीदास की आत्मकथा में उपलब्ध है जो और किसी इतिहास ग्रंथ में नहीं मिलती । बादशाह अकबर और जहाँगीर का एक विश्वस्थ उमराव, कुरवानी जाति का तुर्क, चार हजारी मनसबदार चीनी किलीच खाँ, जौनपुर और बनारस का

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

धनी था, दाता और वीर था । उसने २८ वर्षीय सुकवि बनारसीदास को, बादशाह जहाँगीर के नवें राज्यवर्ष में सिरोपाव से सम्मानित किया ।

कबहुँ नाममाला पढै, छंद कोस सुतबोध
करैं कृपा नितएक सी, कबहूँ न होइ विरोध । छंद (४५५)

चीनी किलीच खाँ अपना हिंदी का ज्ञान बढ़ाने के लिए सुकवि बनारसीदास से कभी उनका बनाया शब्दकोश नाममाला और कभी छंदशास्त्र का ज्ञान करानेवाला श्रुतबोध आदि ग्रंथ पढ़ता था । वह सुकवि बनारसीदास पर कृपा भाव रखता था । दोनों में कभी विरोध भाव नहीं उत्पन्न होता था । बनारसीदास उसे अपने मित्र के रूप में देखते थे । बनारसीदास का यह आत्मकथ्य इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि मुगल काल में केवल बादशाह आदि ही नहीं, उनके अधीनस्थ राज्याधिकारी भी अपना हिंदी का ज्ञान बढ़ाने के लिए हिंदी कवियों का सत्संग करते थे, उन्हें अपना शिक्षक नियुक्त करते थे । बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा अपने समय की सामान्य बोलचाल की भाषा में अर्थात १६वीं - १७वीं शताब्दी में अंतर-जनपदीय, आंतरिक, तथा विदेश व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि तथा खत्री, बनिया आदि व्यपारी जातियों के सारे हिंदी भाषी प्रदेशों में फैल जाने के कारण जिस भाषा का प्रचार-प्रसार सारे उत्तरी भारत में हो गया था और जिसे हिंदी, हिंदवी, हिंदुई, हिंदुगी कहा जाता था, उसी में लिखी है ।

बनारसीदास की आत्मकथा की भाषा की सबसे बडी विशेषता है उसमें खडीबोली के रूपों का प्रचुरता से प्रयोग । जैसे

- जैसा घर तैसी नन्हसाल (४३)
- हुआ हाहाकार (६०)
- चहल पहल हुई निज धाम (२०८)
- घर का माल किया एकठा (२८२) ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

बनारसीदास के काल में व्यापार-वाणिज्य, शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था तथा सामाजिक व्यवहार में राजभाषा फारसी व अरबी के अनेकानेक शब्दों का प्रयोग बोलचाल की भाषा में होने लगा था । उन्होंने अपनी आत्मकथा में इन शब्दों का प्रयोग बेहिचक किया है उदा: दिलासा (५४), दरदबंद (१७१), दरवेश (१२२), तहकीक (३००), इजार (३१९) फारिग (४०३) नखासा (५७१) पैजार (६०४) ।

निष्कर्ष :

बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा दोहा, चौपाई के ६७५ छेदों में लिखी है । उसमें ५७३ छंदों में पूर्व जीवनकाल का -शैशव, बाल्यकाल, किशोरकाल वय:संधि काल के १४ वर्ष की आयु से १९ वर्ष तक के ५ वर्षों के आयुकाल में कुलरीतियों का त्याग कर देने, कुल की प्रतिष्ठा ताक पर रखकर आशिकबाज बनने, आयु के १६ वें वर्ष में सिफलिस रोग से ग्रस्त होने, २४ वर्ष की आयु में व्यापारी जीवन आरंभ करने, नेमा साहु के साझीदार बनकर निज उद्यम से लक्ष्मीवान बनने, फिर साझा समाप्त कर ३० वर्ष की आयु में आगरा में कपड़े का स्वतंत्र व्यापार करने तक का वृतांत है । इस काल के बाद का उनका जीवन वृत्तांत उनके उत्तर काल का जीवन-वृत्तांत कहा जा सकता है । उनकी स्फुट काव्य कृतियों का संकलन बनारसी विलाप नाम से उनके एक भक्त ने किया जो उनके देहांत के बाद ही चैत सुदी २ संवत् १७०१ (सन् १६४४) में ग्रंथरूप में तैयार हो गया । उनकी अंतिम रचना फालगुन सुदी सप्तमी संवत् १७०० (सन् १६४३) में समाप्त हुई । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका देहांत उसके बाद ही संवत् १७०० (सन् १६४३) के लगभग हो गया था । बनारसीदास की आत्मकथा में उनके देशकाल के अनेकानेक दुर्लभ चित्र सितारों की भांति झलमलाते दिखाई पड़ते हैं ।

Copyright @ 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 7 July 2020

सहायक ग्रंथ

१) शिवकुमार शर्मा - हिंदी साहित्य का इतिहास

२) रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास

३) ज्ञानचंद जैन - कवि बनारसीदास की आत्मकथा

डॉ. जयलक्ष्मी एफ़.पाटील
सहायक प्राध्यापक
पी.जी. विभाग
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
धारवाड - ५८० ००१ (कर्नाटक)
ई-मेल : pjayalaxmi98@gmail.com
Ph.No. 9481835968

Copyright @ 2020 Authors